Research Paper | E-ISSN NO : 2455-295X | VOLUME : 9 | ISSUE : 5 | MAY 2023

चोलकालीन साम्राज्य का प्रशासनिक ढांचा : एक ऐतिहासिक अध्ययन

डॉ सुरभि [1]

[1] असिस्टेंट प्रोफेसर, इतिहास, (विद्या संबल योजना) राजकीय महाविद्यालय, रतनगढ़

ABSTRACT:

दक्षिण दक्षिण भारत में निसंदेह चोल साम्राज्य अपने संपूर्ण प्रभुत्व को प्राप्त एक शक्तिशाली साम्राज्य था, जिसका उदय नवीं शताब्दी में हुआ और जिसके अधिकार में अधिकांशतः दक्षिण प्रायद्वीप के भाग निहित थे । इस समय चोल शासकों ने श्रीलंका को अपने अधिकार क्षेत्र में लेकर मालद्वीव आदि विभिन्न द्वीपों पर भी अपना अधिकार प्राप्त कर लिया था। कुछ समय तक इसका प्रभाव कलिंग और दोआब पर भी था । चोल शासक अपनी विभिन्न प्रकार की शक्तियों के दम पर दक्षिण पूर्वी एशिया में भी अपना प्रभाव कायम करने में सफल हुए । प्रारंभिक प्रतिकूल परिस्थितियों पर विजय प्राप्त करने के पश्चात लगभग 2 शताब्दियों तक अर्थात बारहवीं ईस्वी के मध्य तक चोल शासकों ने न केवल एक स्थिर एवं स्वस्थ्य प्रशासन किया वरन् विभिन्न कलाओं को भी अनेक प्रकार से बढ़ावा दिया। कुछ इतिहासकारों का तो यहां तक मानना है कि चोलकाल दक्षिण भारत का एक स्वर्णिम युग रहा है। उस समय चोल प्रशासन व्यवस्थाओं ने अपने साम्राज्य को विभिन्न प्रकार से दृढ़ता प्रदान की उनकी पहचान बड़ी-बड़ी विजय के द्वारा ही नहीं वरन कुशल शासन प्रबंध से भी जानी जाती थी उनके इतिहास का सबसे महत्वपूर्ण और प्रभावशाली पक्ष उनकी सुदृढ़ शासन व्यवस्था ही थी।

KEYWORDS:

चोल साम्राज्य, प्रशासन, प्रशासनिकढांचा, दक्षिण भारत का स्वर्ण युग, और विश्लेषणात्मक अध्ययन।

आलेख प्रस्तुति

प्राचीन भारत में चोल साम्राज्य एक राजवंश के रूप में स्थापित था । दक्षिण भारत में और निकटवर्ती अन्य विभिन्न देशों में तमिल चोल शासकों ने नवी शताब्दी से लेकर तेहरवीं शताब्दी के मध्य अत्यधिक शक्ति, समृद्धि से परिपूर्ण सुगठित शासन व्यवस्था के साथ कुशल साम्राज्य का निर्माण किया। यदि देखा जाए तो चोल शब्द की व्युत्पत्ति विभिन्न रूपों में की जाती रही है। कर्नल जेरिनो ने चोल शब्द को संस्कृत काल एवं कोल से संबद्ध करते हुए इसे दक्षिण भारत के कृष्णवर्ण आर्य समुदाय का सूचक माना है। आरंभिक काल से ही चोल शब्द का प्रयोग इसी नाम के राजवंश द्वारा शासित प्रजा और भूभाग के लिए व्यवहृत होता रहा है। संगमयुगीन मणिमैक्लै ने चोलों को सूर्यवंशी कहा है। चोलों के अनेक प्रचलित नामों में शेंबियन भी है। शेंबियन के आधार पर उन्हें शिव से उद्धत सिद्ध किया गया हैं। 12वीं सदी के अनेक स्थानीय राजवंश अपने को करिकाल से उद्धृत उनका कश्यप गोत्रीय बताते है। चोलों के उल्लेख प्राचीन काल से ही प्राप्त होने लगते है। कात्यायन ने चोलों का उल्लेख किया है। अशोक के विभिन्न अभिलेखों में भी इसका उल्लेख उपलब्ध है। किंतु इन्होंने ही दक्षिण भारतीय इतिहास को संभवतः प्रथम बार प्रभावित किया था। संगमकाल के अनेक महत्वपूर्ण चोल सम्राट मे करिकात अत्यधिक प्रसिद्ध हुए। संगमयुग के पश्चात् का चोल इतिहास अज्ञात है।

चोल साम्राज्य का अवतरण नवीं शताब्दी में हुआ था जिस के अधिकार में दक्षिण प्रायद्वीप के अधिकांश भाग विद्यमान थे। इन्होंने श्री लंका पर विजय प्राप्त कर मालदीप दीपू पर भी अपना अधिकार जमाया था। कुछ समय तक इनकी छाया कलिंग और तुंगभद्र के दोआब पर भी रही। इनके पास शक्तिशाली नौसेना थी जिसके दम पर यह दक्षिण पूर्वी एशिया में अपना साम्राज्य स्थापित करने में सफल हो सके। इन सब से सिद्ध होता है की चोल साम्राज्य बिना किसी संदेह के एक शक्तिशाली साम्राज्य था जिन्होंने समय-समय पर विभिन्न प्रकार की कठिनाइयों का सामना करते हुए भी अपने सभी मंसूबों में सफलता प्राप्त की और इस प्रकार दो शताब्दी तक चोल शासकों ने शासन किया। दक्षिण भारत चोल काल का स्वर्ण युग था।

चोल साम्राज्य की स्थापना एवं उत्थान

पल्लवों के एक सामंती सरदार विजयालय ने चोल साम्राज्य की स्थापना की थी जो 850 ईसवी में तंजौर को अपने अधिकार क्षेत्र में लेकर पांडे राज्य पर आक्रमण करने हेतु तैयार हो गया था। उसी ने 897 तक शक्ति संपन्न होकर पल्लव शासकों को हराकर उनकी हत्या कर सारे टौंड मंडल पर विजय प्राप्त कर अपना अधिकार कर लिया था। इसके पश्चात पल्लव इतिहास के पन्नों से लुप्त हो गए और चोल शासकों को राष्ट्रकूटों के विरुद्ध भयावह संघर्ष करना पड़ा था । राष्ट्रकूट शासक कृष्ण तृतीय ने 949 ईसवी में चोलों के सम्राट परान्तक प्रथम को हराकर चोल साम्राज्य के उत्तरी क्षेत्रों पर अपना अधिकार जमा लिया था जिसके फलस्वरूप चोल वंश अत्यधिक आहत हुआ और कृष्ण तृतीय की मृत्यु हो गई। इस सब के बाद राष्ट्रपति के पतन के बाद चोल साम्राज्य एक बार पुनः उठ खड़ा हुआ।

दक्षिण भारत में छठी शताब्दी के मध्य के बाद पल्लवों, चालुक्यों तथा पाण्ड्य वंशों का राज्य रहा। पल्लवों की राजधानी कांची, चालुक्यों की बादामी तथा पाण्ड्यों की राजधानी मदुरई थी, जो आधुनिक तंजौर में है और दक्षिण अर्थात् केरल में, चेर शासक थे। कर्नाटक क्षेत्र में कदम्ब तथा गंगवंशों का शासन था। इस युग के अधिकतर समय में गंग शासक राष्ट्रकूटों के अधीन थे या उनसे मिलते हुए थे। राष्ट्रकूट इस समय महाराष्ट्र क्षेत्र में सबसे अधिक प्रभावशाली थे। पल्लव, पाण्ड्य तथा चेर आपस में तथा मिलकर राष्ट्रकूटों के विरुद्ध संघर्षरत थे। इनमें से कुछ शासकों विशेषकर पल्लवों के पास शक्तिशाली नौसेनाएँ भी थीं। पल्लवों के दक्षिण पूर्व एशिया के साथ बड़े पैमाने पर व्यापारिक सम्बन्ध थे और उन्होंने व्यापार तथा सांस्कृतिक सम्बन्धों को बढ़ाने के लिए कई राजदूत भी चीन भेजे। पल्लव अधिकतर शैव मत के अनुयायी थे और इन्होंने आधुनिक चेन्नई के निकट महाबलीपुरम में कई मन्दिरों का निर्माण भी करवाया।

बहुत लंबे समय के अंतराल में अपने प्रभुत्व को खो देने के बाद चोल साम्राज्य का नौंवी शताब्दी के मध्य एक बार पुनः उत्थान हुआ इस समय चोलवंश का संस्थापक विजयालय पल्लवों की अधीनता में पूरे देश का शासक था। विजयालय की वंश परंपरा में अनेक शासक हुए जिनकी संख्या लगभग 20थी, जिन्होंने लगभग 400 से अधिक वर्षों तक शासन किया। विजयालय के बाद आदित्य प्रथम ने 871 से 907 ईस्वी तक तथा परान्तक प्रथम ने 907 से 955 तक क्रमशः शासन किया। परांतक प्रथम ने पांड्य सिंहल नरेशों की सम्मिलित – शक्ति को, पल्लवों, बाणों, बैडुबों के अतिरिक्त राष्ट्रकूट कृष्ण द्वितीय को भी पराजित किया। चोल शक्ति एवं साम्राज्य का वास्तविक संस्थापक परांतक ही था। परांतक प्रथम के बाद के 32 वर्षों में अनेक चोल राजाओं ने शासन किया। इनमें गंडरादित्य, अरिंजय और सुंदर चोल या परान्तक द्वितीय प्रमुख थे।

चोलों की केन्द्रीय शासन व्यवस्था

चोल प्रशासन में सर्वाधिक महत्वपूर्ण पद राजा का होता था। चोल कालीन शासन व्यवस्था राजतंत्रीय थी। वंशानुगत व्यवस्था पर ही राजा का पद आधारित था। अर्थात राजा की मृत्यु होने के बाद उत्तराधिकार के प्रश्न के उठने पर संघर्ष को शांत करने के लिए राजा स्वयं अपने शासनकाल में ही अपने उत्तराधिकारी का नाम घोषित कर दिया करता था जिसके फलस्वरूप राजा की मृत्यु के बाद उत्तराधिकार को लेकर किसी भी प्रकार का संघर्ष नहीं

होता था और उत्तराधिकारी भी शासक बनने से पहले साम्राज्य के प्रशासन, राज्य के कार्यों, जिम्मेदारियों आदि के प्रति अत्यधिक अनुभवी हो जाया करता था। इससे युवराज बनते ही वह समस्त प्रशासनिक कार्यों में राजा के साथ सहभागिता करने में सक्षम रहता था चोल शासक प्रशासन का राज्य का सर्वोच्च अधिकारी हुआ करता था शासक होने के बाद भी उसे कानून बनाने का अधिकार नहीं था वह मात्र सार्वजनिक प्रशासन अनियमितताओं और सामाजिक सुधार कार्यों में आवश्यकता के अनुरूप मौखिक कार्यवाही कर सकता था। अनेक स्थानों पर ऐसा वर्णन प्राप्त होता है कि चोलों की केंद्रीय प्रशासन में मंत्रिपरिषद नहीं होती थी इसके स्थान पर कर्मचारियों की मदद से ही शासन संपन्न हुआ करता था यह कर्मचारी ही समय-समय पर राजा को विभिन्न प्रकार का परामर्श दिया करते थे और राजा भी इस बात की ओर ध्यान रखता था कि कहीं नौकरशाही स्थानीय संस्थाओं के क्रियाकलापों पर हस्ताक्षेप न कर सके अतः वह स्वयं ही अपनी समस्त संस्थाओं के कारोबार की समय-समय पर जांच और देखरेख व नियंत्रण करता था।

चोल साम्राज्य के तत्कालीन अभिलेखों का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि चोल शासक केंद्रीय नियंत्रण और स्थानीय संगठन के मध्य एक संतुलन बनाकर रखते थे। फलस्वरूप व्यक्तियों और राज्य के मध्य किसी भी प्रकार का विवाद अथवा संघर्ष नहीं होता था। इसके अतिरिक्त चोल शासक अपने साम्राज्य की शासन व्यवस्था को सुचारू रूप से गतिमान करने के लिए नित्य ही राज्य के विभिन्न भागों में भ्रमण किया करते थे एवं शासन संबंधी समस्त सूचनाओं से स्वयं को अपडेट रखा करते थे।

चोल साम्राज्य में राजकीय आदेशों का क्रियान्वयन – ओलै नाम के अतिविशिष्ट अधिकारी के माध्यम से हुआ करता था। राजा का जो प्रधान सचिव होता था वह औलनायमकम के नाम से जाना जाता था। चोल प्रशासनिक व्यवस्था में प्रतिभाग करने वाले उच्च पदाधिकारियों को पैरुन्दनम् एवं निम्न श्रेणी के पदाधिकारियों को शेरुन्दनम् कहकर पुकारा जाता था। चोल साम्राज्य में कर्मचारियों को वेतन का भुगतान नगद रूप में न करके भूमि के दान के रूप में किया जाता था। राज्य के उच्च अधिकारियों अर्थात मंत्रियों को उडनकुट्टम् कहा जाता था।

<u>प्रशासकीय इकाइयाँ</u>

चोल शासन में प्रशासन की सुविधा के लिए साम्राज्य को 6 प्रांतों में बांट दिया गया था। प्रांत को मण्डलम्' के नाम से जाना जाता था। यहां के राजकुमारों को ही यहां के प्रशासन को देखना होता था। मण्डलम्' को कोट्टम कमिश्नरी में, कोट्टम को नाडु अर्थात जिले में एवं प्रत्येक नाडु को कई कुर्रमों अर्थात ग्राम समूहों में बांटा जाता था। इस प्रकार बड़े-बड़े शहर और गांव अलग-अलग कुर्रम के रूप में जाने जाते थे। और तनियूर या तंकुरम कहलाते थे। कुल मिलाकर चोल प्रशासन में समस्त विभागों के अपने अलग-अलग नाम थे जो वहां पर उसी रूप में प्रचलित थे। मण्डलम् से लेकर ग्राम स्तर तक के प्रशासन हेतु स्थानीय सभाओं का सहयोग लिया जाता था। ''नाडु' की स्थानीय सभा को 'नाटूर' एवं नगर की सभाओं को क्रमशः श्रेणी और पूग कहा जाता था।

चोल सम्राट परान्तक प्रथम के शासन के 12 वें एवं 14 वें वर्ष के प्रसिद्ध 'उत्तरमेरूर अभिलेखों में चोल कालीन स्थानीय स्वशासन एवं ग्राम प्रशासन व्यवस्था का साक्ष्य मिलता है। स्थानीय स्वशासन चोल शासन प्रणाली की महत्त्वपूर्ण विशेषता थी। यह चोल साम्राज्य की शासन प्रणाली की सबसे छोटी इकाई थी, जो शासन का ही हिस्सा थी और ग्राम सभा समितियों के द्वारा इसका संचालन हुआ करता था। समितियों के लिए सदस्यों का निर्वाचन होता था। समिति के सदस्य बनने के लिए निश्चित मापदंड को पूरा करना सभी के लिए आवश्यक था। चुनाव ग्राम वासियों के द्वारा किया जाता था। ग्राम सभाओं के अधिकारी आवश्यकता पड़ने पर राजा के साथ संपर्क करते थे। ग्राम सभाओं के मध्य मतभेद होने पर राजा हस्तक्षेप करता था। ग्राम सभाओं की सहायता से भूमि कर को जमा करके राजकोष में दे दिया जाता था। इसी के साथ साथ स्थानीय स्वशासन में 'उर ' तथा 'सभा' व महासभा के सदस्य वयस्क होते थे। उर सर्वसाधारण लोगों की समिति थी, जिसका कार्य होता था सार्वजनिक कल्याण के लिए तालाबों व बगीचों के निर्माण हेतु गांव की भूमि का अधिग्रहण करना।

<u>सभा या ग्राम सभा</u>

चोल साम्राज्य में मूल रूप से अग्रहारों व ब्राह्मणों की बस्तियां एवं उनकी संस्थाएं भी विद्यमान थीं। इन सदस्यों को 'पेरुमक्कल' के नाम से अभिहित किया जाता था। अभिलेखों के अनुसार ग्राम को 30 विभागों में बांटा गया था। निश्चित योग्यता रखने वाले एक व्यक्ति को ग्राम सभा के सदस्य के रूप में चुना जाता था। उनके लिए आवश्यक था कि, वह उस ग्राम का निवासी हो। उसकी आयु 35 से 70 वर्ष के बीच हो। वह लगभग डेढ़ एकड़ से अधिक भूमि का स्वामी हो।वह स्वयं की भूमि पर बनाये घर का निवासी है। इसी के साथ साथ उसको वैदिक ऋचाओं , धर्म ग्रंथों, ब्राह्मण ग्रंथों का भी भली प्रकार से ज्ञान होना आवश्यक था। इसके विपरीत यदि वह पिछले 3 वर्ष से किसी भी समिति का सदस्य न रहा हो अथवा किसी भी सदस्य के रूप में जिसने आय-व्यय का लेखा-जोखा न किया हो या अपने विभाग को किसी प्रकार का कोई विवरण न दिया हो अथवा वह किसी भयंकर अपराध में अपराधी घोषित हो चुका हो तो उसकी सदस्यता अयोग्य घोषित कर दी जाती थी।

इस प्रकार 30 भागों में बांटे गए ग्राम के सदस्यों का चयन एक मटके में पर्ची डालकर और उसे निकालते हुए पर्ची के माध्यम से किया जाता था। यह पर्चे किसी बालक के द्वारा निकलवाए जाते थे। चयनित व्यक्ति का कार्यकाल 1 वर्ष का होता था। इन सदस्यों में 12 सदस्य स्थाई समिति के, 12 सदस्य उपवन समिति के एवं 7 सदस्य तालाब समिति के लिए चुने जाते थे। इन समितियों को **<u>वारियम</u>** कहा जाता था जो ग्राम सभा के कार्यों का संचालन किया करती थीं।इस प्रकार ग्राम सभा के कार्यों के लिए समितियों का चयन निर्देशन एवं संगठन होता था। महासभा को पुरुगार्रि इसके सदस्यों को पेरुमक्कल एवं समिति के 3 सदस्यों को वारियप्पेरुमक्कल कहा जाता था। व्यापारियों की सभा को 'नगरम' कहा जाता था। नगरों में व्यापारियों के विभिन्न संगठन थे, जैसे मणिग्राम, वलंजीयर आदि। चोल काल के उर का रूप लघुगणतंत्र जैसा था। इस प्रकार चोल साम्राज्य में सार्वजनिक भूमि महासभा के अधिकार क्षेत्र में रहती थी। इसका कार्य ग्राम वासियों पर कर लगाना, उसको वसूलना एवं बेगार लेना आदि था। यह सभा वर्ष भर में एक बार केंद्रीय सरकार को कर दिया करती थी। इस प्रकार महासभा के आय और व्यय का लेखा जोखा केंद्र सरकार के अधिकार क्षेत्र में रहता था। केंद्र सरकार असामान्य परिस्थितियों में ग्राम सभा के स्वायत्त शासन में हस्तक्षेप करने का अधिकार भी रखती थी।

<u>ग्राम सभा के कार्य</u>

चोल साम्राज्य में ग्रामसभा को विभिन्न प्रकार के कार्य करने होते थे। उसकी अनेक प्रकार की जिम्मेदारियां हुआ करती थीं। जैसे तालाब और सिंचाई के साधनों का प्रबंध करना, भूमि कर एकत्रित करना, एकत्र धन को सरकारी खजाने में जमा करना, ग्राम वासियों के मुकदमों का फैसला करना, सड़कें बनवाना, औषधालय खोलना, बाजारों और पेंठों का प्रबंध करना, ग्राम के मंदिरों और सार्वजनिक साधनों की देखभाल करना आदि ग्राम सभा के कार्य थे।

<u>सेना</u>

चोल साम्राज्य के अंतर्गत जल व थल दोनों प्रकार की सेना हुआ करती थी। राजा इन दोनों ही प्रकार की सेनाओं का प्रधान होता था। चोल सेना आदि विभिन्न रेजीमेंट में बंटी हुई थी। चोल कालीन अभिलेखों से ज्ञात होता है कि इन रेजीमेंटों की संख्या लगभग 70 थी। इनके नाम पार्थिव, शेखर, समरकेसरी, विक्रम सिंह, दानतोंग, तायतोंग आदि रखे गए थे। अभिलेखों के अनुसार चोल साम्राज्य के विस्तार के साथ-साथ उनकी सेना का भी अत्यधिक विस्तार हो गया था। इनकी थल सेना के मुख्य तीन अंग होते थे जो हाथियों का कोर, घुड़सवार तथा पैदल सेना के रूप में जाने जाते थे। इसके अलावा धनुर्धर और असिधरों की भी रेजिमेंट होती थी। सेना को समय-समय पर युद्ध का अभ्यास कराना, अनुशासन में रखना, शिविर आयोजित करना, धर्म युद्ध के नियमों का पालन कराना आदि का ज्ञान कराया जाता था। हालांकि चोल सेना युद्ध में धर्म युद्ध के नियमों का पालन नहीं करती थी। युद्ध के दौरान निरीह जनता, स्त्रियों, बच्चों को नुकसान पहुंचाना, स्त्रियों को अपमानित कर अंग भंग करना, धन के लालच में मंदिरों को तोड़ना आदि कार्य भी होते थे, जो धर्म विरुद्ध थे।

चोल सेना अपने सैन्य संगठन को अत्यधिक मजबूत बनाए रखने के लिए बहुमूल्य अरबी घोड़ों को खरीदती थी। जबकि अधिकांश घोड़े दक्षिण भारत की जलवायु के कारण मर जाते थे और इस प्रकार राज्य का बहुमूल्य धन विदेशों को चला जाता था। हालांकि चोल सेना की विशेषता बड़े-बड़े जहाजी बेड़ों का संगठन था शक्तिशाली जहाजों के कारण चोल राजाओं ने समुद्र पार कर अनेक द्वीपों पर भी विजय प्राप्त की थी यही कारण था कि बंगाल की खाड़ी एक चोल झील के रूप में परिवर्तित हो गई थी।

<u>आय के साधन -</u>

चोल साम्राज्य की आय का मुख्य साधन भू राजस्व था जिसको निर्धारित करने से पहले भूमि का सर्वेक्षण, वर्गीकरण एवं माप तोल कराई जाती थी। चोल कालीन अभिलेखों के माध्यम से पता चलता है कि राजराज प्रथम एवं कुलोत्तुंग के पैरों की माप ही भूमि की लंबाई को

नापने का प्रमाण बनी। उस समय भूमि की उर्वरक क्षमता एवं वार्षिक फसल चक्र को ध्यान में रखते हुए भूमि कर का निर्धारण किया जाता था। चोल काल में भूमि की उपज का एक तिहाई हिस्सा भूमिकर हुआ करता था। जिसे अन्न व नगद दोनों रूपों से ग्रहण किया जाता था। अभिलेखों की माने तो चोल काल में भूमि कर के अतिरिक्त अन्य विभिन्न कर के वसूलने का वर्णन प्राप्त होता है। जैसे वृक्ष कर, सुपारी के बागान पर कर, गृह कर, तेलघानी कर, ग्राम सुरक्षा कर, व्यापारिक प्रतिष्ठान कर, लौहकार , बढ़ई, स्वर्णकार , कुंभकार आदि पेशों पर लगाया जाने वाला कर आदि। उस समय विवाह समारोह पर भी कर लगाया जाता था। इसके अतिरिक्त अपने निकटवर्ती क्षेत्रों में लूटमार, आक्रमण आदि के माध्यम से भी चोल राजवंश अपने को समृद्ध किया करते थे। अभिलेखों में करों व वसूलियों के लिए 'हरै' या वरि मरुन्पाडु और 'द्रंडम् शब्द का प्रयोग किया गया है। चोल साम्राज्य में अन्न का मान एक कलम (तीन मन) था। बेलि भूमि को मापने की इकाई थी। सुवर्ण सिक्के को काशु कहा जाता था।

न्याय व्यवस्था

चोल प्रशासन की न्याय व्यवस्था अत्यधिक उच्च कोटि की थी। उस समय में राजा सर्वोच्च न्यायाधीश होता था।चोल साम्राज्य में मुकदमों का निर्णय करने का अधिकार स्थानीय संस्थाओं को प्राप्त था। यदि उनके द्वारा किसी भी विवाद का निवारण नहीं हो पाता था तब वह विवाद अंतिम रूप से राजा के पास जाता था। चोल कालीन अभिलेखों में भी राजा के धर्म आसन का अंतिम न्याय प्राप्त करने के रूप में उल्लेख मिलता हैविभिन्न प्रकार के अपराधों के लिए चोल साम्राज्य में अलग-अलग दंड प्रणालियां विद्यमान थीं। चोल साम्राज्य में धोखेबाजी करना, किसी की हत्या कर देना, चोरी करना, व्यभिचार करना आदि सभी को एक गंभीर अपराध के रूप में देखा जाता था। कोई भी व्यक्ति यदि अपराध करता था तो इसकी छानबीन ग्राम सभाओं के द्वारा की जाती थी। जिन अपराधों का कोई गवाह नहीं होता था उनका फैसला दिव्य प्रथा के द्वारा किया जाता था। अपराधी को मृत्युदंड देने से पूर्व राजा की आज्ञा लेना आवश्यक था । चोल साम्राज्य में दंड व्यवस्था में आर्थिक दंड तथा सामाजिक अपमान का दंड देने की प्रथा थी। आर्थिक दंड में मुद्राएं दी जाती थी।

निष्कर्ष

उपरोक्त विवरण से ज्ञात होता है की चोल साम्राज्य अपने आप में एक सशक्त साम्राज्य था, जो अपनी तर्कशीलता बुद्धि बल एवं चातुर्य से एक लंबे समय तक शासन में रहा। उसकी सुगठित प्रशासनिक व्यवस्था, न्याय व्यवस्था तथा सैन्य संगठन ने उसे एक मजबूत और सुदृढ़ आधारशिला प्रदान की जिसके बल पर वह एक लंबे अरसे तक शासन करने में सक्षम रहा। चोल साम्राज्य के विस्तार के साथ राजा की शक्तियों और सम्मान में भी वृद्धि हुई। अभिलेखों के अनुसार राजा को असीमित शक्तियां प्राप्त थी वह अपने प्रशासनिक विभाग के सदस्यों के द्वारा समय-समय पर परामर्श लिया करता था। चोल कालीन साम्राज्य के कुछ राजाओं की मूर्तियां भी मंदिरों में प्राप्त हुई है और कुछ विशेष मंदिरों का नाम वहां के राजा के नाम पर रखा गया है।

REFERENCES

1. लूनिया, बी 0 एन 0 प्राचीन भारतीय संस्कृति।
2. श्रीवास्तव, के ० सी ०, प्राचीन भारतीय इतिहास एवं संस्कृत
3. दुबे, हरिनारायण, दक्षिण भारत का इतिहास, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
4. गुप्ता, देवेन्द्र, प्राचीन भारतीय समाज एवं अर्थव्यवस्था
5. शास्त्री, नीलकंठ, दक्षिण भारत का इतिहास।
6. अजय कुमार, दक्षिण भारतश का राजनीतिक इतिहास।
7. मिश्र, श्याम मनोहर दक्षिण भारत का राजनैतिक इतिहास (प्रारम्भ से 14 वीं शताब्दी तक।
8. गंडंश्रीवास्तव बलराम दक्षिण भारत, चौ खम्बा विद्या भवन बनारस।
9. झा, द्विजेन्द्र नारायण तथा श्रीमाली, कृष्णमोहन, प्राचीन भारत का इतिहास